

प्रतिवेद्य

समक्ष भारतीय सर्वोच्च न्यायालय
सिविल अपीलिय न्यायक्षेत्र

सिविल अपील संख्या 3740/2019

[एस. एल. पी. (सी.) सं. 15358/2018 से उद्धृत]

श्री एन. के. जानू
उप निदेशक
सामाजिक वानिकी प्रभाग,
आगरा व अन्य

.....अपीलार्थीगण

बनाम

लक्ष्मी चन्द्रा

.....प्रत्यर्थी

निर्णय

न्यायमूर्ति हेमन्त गुप्ता

1. अनुमति प्रदान की गयी।

उद्घोषणा

“क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा।”

2. वर्तमान अपील के आदेश दिनांक 16.02.2018 में चुनौती है जिसके तहत आवेदन के खण्डन के लिए आदेश दिनांक 06.12.2017 को समीक्षा आवेदन में कमी से निस्तारित कर दिया गया था।

3. मामले का एक विविधतापूर्ण इतिहास रहा है। आरंभ में प्रत्यर्थी ने एक सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका को **उ. प्र. राज्य एवं अन्य बनाम पुत्ती लाल (1998) 1 यूपीएलबीईसी 313** के रूप में प्रतिवेदित मा. उच्च न्यायालय इलाहाबाद के डिवीजन बेन्च के निर्णय की शर्तों में निपटान किया गया था। उक्त निर्णय दिनांक 21.02.2002 को निर्णीत **उ. प्र. राज्य एवं अन्य बनाम पुत्ती लाल (2006) 9 एससीसी 337** के मामले में इस न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है। इस न्यायालय ने यह माना कि दैनिक वेतनभोगी न्यूनतम वेतनमान के हकदार हैं जैसा कि सरकार के समकक्ष में उन्हें प्राप्त हो रहा है और जब तक वे दैनिक वेतनभोगी के रूप में कार्यरत रहेंगे कोई अन्य भत्ते या वेतन वृद्धि के हकदार नहीं होंगे। आगे यह आदेशित हुआ कि चूंकि सांविधिक नियमों, यथा उत्तर प्रदेश नियमितीकरण दैनिक वेतन भोगियों की नियुक्ति के लिए समूह “घ” पदों के नियम, 2001 (नियमावली २००१) को फँसाया गया है। अतः राज्य द्वारा किसी अन्य योजना को तैयार करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

4. उक्त आदेश को मा. उच्च न्यायालय द्वारा पारित किये जाने के पश्चात प्रत्यर्थी ने दोबारा सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 43443/2004 दायर किया। उक्त रिट याचिका दिनांक 23.10.2008 को निम्नलिखित निर्देशों के साथ निस्तारण किया गया—

“ नियम 4 उत्तर प्रदेश नियमितीकरण दैनिक वेतन भोगियों की नियुक्ति के लिए समूह “घ” पदों के नियम, 2001 की व्याख्या मा. न्यायालय द्वारा विश्वेश्वर बनाम प्रधान सचिव, वन अनुभाग-3 द्वारा की गई है और यह न्यायालय ने उक्त मामले में यह माना है कि यदि कर्मचारी निर्दिष्ट तारीख पर कार्यरत है और उपरोक्त नियमों की अधिसूचना की घोषणा की तारीख पर इस प्रकार के दैनिक वेतन पद पर बना रहता है तो वह नियमितीकरण होने के लिए हकदार है, इस तथ्य के बावजूद कि कर्मचारी ने रुक रुककर कार्य किया है। वर्तमान मामले में, जैसा कि याचिकाकर्ता से अधिवक्ता द्वारा कहा गया कि वर्ष 1983 से काम में लगा हुआ है, यद्यपि उसने रुक रुक कर कार्य

उद्घोषणा

“क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्विधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा।”

किया है, परन्तु उसकी सेवा के नियमितिकरण के विचारार्थ 2001 तक नियमित रूप से कार्य किया, उपरोक्त नियम 4 के प्रावधान के दृष्टिगत इस न्यायालय द्वारा विश्वेश्वर बनाम प्रधान सचिव, वन (उपरोक्त) के मामले में व्याख्या की गई है। उपरोक्त के आलोक में मामले के गुण-दोषों पर गये बिना याचिकाकर्ता को उत्तर प्रदेश नियमितिकरण दैनिक वेतन भोगियों की नियुक्ति के लिए समूह "घ" पदों के नियम 2001 प्रावधान के अन्तर्गत विपक्षी दलों को निर्देशित किया जाता है कि उसकी सेवाओं के नियमितीकरण पर विचार करें और कानून और साथ ही साथ शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के अन्तर्गत नियमित वेतनमान के न्यूनतम भुगतान के साथ न्यायालय द्वारा इस आदेश के प्रमाणित प्रति की प्रस्तुति की तारीख से 3 माह के अन्दर शीघ्रता से अधिमानित किया जाए। "

5. इस प्रकार की शर्तों में प्रभागीय निदेशक, सामाजिक वानिकी प्रभाग आगरा ने दिनांक 19.11.2008 को एक आदेश पारित किया कि प्रत्यर्थी नियमितिकरण / समकक्ष वेतन के लिए योग्य नहीं है। आदेश का प्रासंगिक उद्धरण अग्रलिखित है-

" क्योंकि उपरोक्तानुसार दैनिक कर्मचारी को लगातार कार्य करते नहीं पाया गया था। अतः श्री लक्ष्मी चन्द्रा नियमितीकरण / समकक्ष वेतन के लिए पात्रता श्रेणी में नहीं आते। मा . सर्वोच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 10.04.2005 के एस . एल. पी. संख्या 3393/1999, एस. एल. पी. संख्या 91/03, 01/95 (सेक्रेटरी ऑफ स्टेट ऑफ कर्नाटक एवं अन्य बनाम उमा देवी) में स्पष्ट निर्देश है कि जिन व्यक्तियों का चयन बिना किसी चयन प्रक्रिया के किया गया है वे स्थायी पद के सापेक्ष नियमितीकरण के लिए पात्र नहीं हो सकते।

अतः यथोचित विमर्श के पश्चात अधोहस्ताक्षरी ने फैसला किया है कि श्री लक्ष्मी चन्द्र पुत्र श्री पती राम नियमितीकरण / समकक्ष वेतन के लिए अपात्र पाये गये हैं और उत्तर प्रदेश दैनिक वेतनभोगी नियुक्ति नियमावली 2001 समूह-घ के लाभ को अर्जित नहीं कर सकता।

अतः उसके अभिवेदन दिनांक 06.11.2008 को एतद्द्वारा निस्तारित की जाती है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्विधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा।"

6. प्रत्यर्थी ने नियमितीकरण और / अथवा न्यूनतम वेतनमान के उपरोक्त आदेश के दावे को अस्वीकार करने को चुनौती देने के बजाय एक अवमानना आवेदन (सी) संख्या 1632/2009 दायर की। इस तरह की अवमानना याचिका में, जब वर्तमान अपीलार्थीगणों को एक सूचना जारी की गयी थी तो दिनांक 08.05.2009 को निम्नलिखित आदेश पारित किया गया था-

“ यह आरोप लगाया गया है कि इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 23.10.2008 के आदेश का उल्लंघन किया गया है। याचिका के परिशीलन से, एक प्रथम दृष्ट्या मामला बनाया गया है।

प्रतिपक्षियों को एक सप्ताह के अन्दर जारी सूचनाएँ छः सप्ताह के अन्दर वापसी योग्य हैं। प्रतिपक्षियों को व्यक्ति को इस अवस्था में दिखाई देने की आवश्यकता नहीं है।

प्रति शपथपत्र पूर्वकथित अवधि के अन्दर दायर हो सकती है इसके अतिरिक्त सूचना आहूत होने के पश्चात आरोप तय किये जा सकते हैं।

हालाँकि प्रतिपक्षीगणों को एक महीने के अन्दर आदेश का अनुपालन और सूचनाओं के साथ ही छः सप्ताहों के पश्चात एक तय तारीख का एक अन्य अवसर प्रदान किया गया है। ”

7. तत्पश्चात दिनांक 29.06.2009 को अपीलार्थीगणों द्वारा एक आदेश पारित किया गया था कि प्रत्यर्थी को ₹ 2550-3200/- के न्यूनतम वेतनमान के रूप में ₹2550/- अनुमोदित किया गया है। तदोपरान्त मा. न्यायालय द्वारा दिनांक 31.08.2009 को एक आदेश पारित किया गया था कि यद्यपि समूह “घ” के कर्मचारियों का न्यूनतम वेतन ₹ 6050/- तय किया गया है तो प्रत्यर्थी को ₹ 2550/- के न्यूनतम मासिक वेतन की दर से क्यों दिया जा रहा है। तत्पश्चात राज्य के अधिकारियों की व्यक्तिगत मौजूदगी समय समय पर माँगने के लिए बहुत से आदेशों को पारित किया गया था। दिनांक 03.12.2009 को प्रधान मुख्य वन संरक्षक उ. प्र. को निर्देशित करते हुए एक आदेश पारित किया गया था कि यह सुनिश्चित करें कि परिशुद्ध पात्रता और वरिष्ठता सूची सभी खण्डों में तैयार की जाय

उद्घोषणा

“क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्विधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा।”

और पदग्राहियों को सुनने के पश्चात अंतिम रूप दिया जाय। उक्त आदेश निम्नानुसार पढ़ा गया—

“ पक्षों के लिए विद्वान अधिवक्ता ने सुना। व्यक्ति में प्रधान मुख्य वन संरक्षक उ. प्र. और प्रधान सचिव (वन) मौजूद हैं।

राज्य का वन विभाग विभिन्न योजना एवं परियोजनाओं में अपने कार्य के निष्पादन के लिए दैनिक वेतनभोगियों का उपयोग करता है और वे एक साथ दशकों तक जारी रहते हैं। उनके नियमितिकरण का मामला इस न्यायालय द्वारा तय किया गया था और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की गई थी जिसने इस तरह के दैनिक वेतनभोगियों के नियमितिकरण के लिए एक योजना तैयार करने का निर्देश दिया था। उसके अनुसरण में, उ. प्र. नियमितिकरण दैनिक वेतनभोगियों की नियुक्ति के लिए समूह “घ” पदों की नियमावली 2001 को सरकार द्वारा अधिनियमित किया गया। नियमों के तहत प्राधिकारियों को नियमितिकरण के प्रयोजनों हेतु पात्रता और वरिष्ठता सूची तैयार करने के लिए निर्देशित किया गया था और इसके आधार पर चयन समिति को फैसला लेना था।

विभिन्न रिट याचिकाओं में इस न्यायालय द्वारा सेवा में रूकावट के मुद्दे पर भी विचार किया गया था और यह माना गया कि यदि पदग्राही द्वारा 2001 की नियमावली के आह्वान तक निर्दिष्ट तारीख से कार्य किया जा रहा है, यद्यपि रूकावट के साथ, दिये गये दिशानिर्देशों के अनुसार विचार किया जाना चाहिये और पूर्वकथित नियमों और निर्णयों के आधार पर अनुमति दी गयी और बड़ी संख्या में रिट याचिकाओं को दायर किया गया है।

हालाँकि, न्यायालय को पत्र और मनोभाव में गैर अनुपालन का आरोप लगाते हुए अवमानना आवेदन के साथ भर दिया गया है। विभिन्न मामलों में इस न्यायालय द्वारा या तो काल्पनिक आधार पर या नकली वरिष्ठता और पात्रता सूची के आधार पर अनुपालन को अस्वीकृत कर दिया गया है और यहाँ तक कि यदि पदों की अल्पता का हवाला देते हुए अनुपालन हुआ था तो भी कर्मचारी को केवल न्यूनतम स्तर दिया गया था। इस याचिका पर लंबी सुनवाई की गई और स्पष्ट प्रश्नों पर उपस्थित अधिकारी स्वीकार करते हैं कि विभिन्न प्रभागों में वरिष्ठता और पात्रता सूची तैयार नहीं की गयी है। यह भी अभिलेख पर लाया गया है कि जिन

उद्घोषणा

“क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्विधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा।”

व्यक्तियों ने विभाग में कभी कार्य नहीं किया है उन्हें भी नियुक्त और नियमित किया गया है।

प्रधान मुख्य वन संरक्षक उ. प्र. यह सुनिश्चित करेंगे कि सभी प्रभागों में परिशुद्ध पात्रता और वरिष्ठता सूची तैयार की जाय और अंतिम रूप से सुनवाई के बाद पदग्राही और न्यायालय को विधिवत रूप से अगली तारीख के विषय में सूचित किया जाय। प्रतिउत्तर शपथपत्र का जवाब भी दायर किया जाय।

दिनांक 25.02.2010 को आगे के आदेशों की सूची। ”

8. उक्त आदेश को मा. उच्च न्यायालय के न्यायक्षेत्र इलाहाबाद के विशेष याचिका संख्या 215/2010 में अपीलार्थीगणों द्वारा चुनौती दी गई थी। विशेष याचिका संख्या 215/2010 निस्तारित कर दिया गया था। मा. उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश इस न्यायालय के समक्ष चुनौती का विषय बन गये। इस न्यायालय में **उप निदेशक, सामाजिक वानिकी प्रभाग एवं अन्य बनाम लक्ष्मी चन्द्रा (2016) 4 एससीसी 721** के रूप में प्रतिवेदित निर्णय को वन विभाग के प्रधान सचिव उ. प्र. और प्रधान मुख्य वन संरक्षक को निर्देशित किया गया कि आदेशों के कार्यान्वयन पर मा. उच्च न्यायालय के समक्ष अलग अलग शपथपत्र दायर करना है ताकि सुनिश्चित हो कि पारित आदेशों की शर्तों में तीन महीने के अन्दर कामगारों को वेतन दिया गया है।

इस न्यायालय ने मा. उच्च न्यायालय से भी आग्रह किया है कि इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों की शर्तों में सभी आगामी विकासों के तार्किक निष्कर्ष तक पहुँचने पर विचार किया जाए। दिनांक 17.02.2016 को मा. उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए पक्षों को निर्देशित किया गया था।

9. दिनांक 30.03.2016 को मा. उच्च न्यायालय द्वारा सुनवाई के लिए अवमानना आवेदन (सी) संख्या 1632/2009 दुबारा लिया गया था। यह आदेशित किया गया कि विभाग के लिए कोई तर्क करने का कोई कारण शेष नहीं रह गया है कि सभी दैनिक वेतन कर्मचारी, चाहे वे नियमितीकरण के लिए विचाराधीन हों अथवा नहीं न्यूनतम वेतनमान के हकदार नहीं हैं। **उ. प्र. राज्य एवं अन्य बनाम छिद्दी एवं अन्य (2016) (1) एलजे 226 (विशेष याचिका सं. 1530/2007**

उद्घोषणा

“क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्विधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा।”

24.09.2015 को निर्णीत) के मामले में डिवीजन बेन्च के निर्णय के बल पर विभाग के तर्क पर इस न्यायालय के आदेश को ध्यान में रखते हुए उपलब्ध नहीं हो सकते।

10. उक्त आदेश को अपीलार्थीगणों द्वारा विशेष याचिका संख्या 261/2016-एन. के. जानू एवं अन्य बनाम लक्ष्मी चन्द्रा के मामले में डिवीजन बेन्च के समक्ष चुनौती दी गयी थी। मा. न्यायालय ने अवलोकित किया कि छिद्दी का मामला (उपरोक्त) का आदेश दूसरे डिवीजन बेन्च के निर्णय चंचल कुमार तिवारी एवं अन्य बनाम श्री हरि शंकर [(2011) आईएलएलजे 581 ऑल] के विपरीत है और न्यायालय के पास अब इस मामले में हस्तक्षेप करने का कोई अवसर नहीं है, अब मा. सर्वोच्च न्यायालय के लक्ष्मी चन्द्रा का मामला (उपरोक्त) के आदेश को ध्यान में रखते हुए छिद्दी का मामला (उपरोक्त) के आदेश पर बल दिया गया है। यह अवलोकन किया गया कि स्पष्टीकरण मांगने के लिए इस न्यायालय से आग्रह करना राज्य के लिए खुला है। मा. न्यायालय ने निम्नलिखित रूप से अवलोकन किया-

“ दिनांक 02.02.2016 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आदेश पारित किया गया, प्रभावी रूप से पूर्व के अवसर पर पारित आदेशों के प्रवर्तन को सुनिश्चित करने के लिए स्पष्टतः प्रतिबिंबित करता है, हमारे वैचारिक मत के दृष्टिकोण में यह सत्य है कि विशेष याचिका संख्या 1530/2007 के उत्तर प्रदेश राज्य बनाम छिद्दी एवं अन्य के मामले में डिवीजन बेन्च का निर्णय विशेष याचिका संख्या 1205/2010 के चंचल कुमार तिवारी बनाम उ. प्र. राज्य के मामले में सम्पूर्ण रूप से असंगत है। कार्य के सामान्य प्रणाली में, यदि एक ही विषय-वस्तु पर दो निर्णय सम्पूर्ण रूप से असंगत दिशाओं में हों तो स्थिति के सामंजस्य के लिए पूर्ण पीठ के पास भेज दिया जाता है लेकिन यहाँ मामले का तथ्य यह है कि मामला दिनांक 02.02.2016 को मा. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश से बाहर निर्गत हो रहा है।

मामले के तथ्यों के आलोक में एक बार विशेष याचिका संख्या 1530/2007 में इस न्यायालय के डिवीजन बेन्च द्वारा आदेशों को पारित किया गया था जिस पर राज्य द्वारा भरोसा किया गया था जिसके विषय में श्री पंकज श्रीवास्तव, अधिवक्ता द्वारा सूचित किया गया था कि समीक्षा आवेदन पहले ही दायर किया जा चुका है। एक बार विद्वत एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश सिविल याचिका संख्या 879-883 द्वारा पारित आदेश के साथ सामंजस्यपूर्ण ढंग से है, तब हमारे पास उक्त आदेश के साथ हस्तक्षेप करने का कोई अवसर नहीं है और यह हमेशा

उद्घोषणा

“क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्विधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा।”

राज्य और इसकी शाखा के लिए खुला है और विशेष याचिका संख्या 1530/2007 में आगामी अवसर पर डिवीजन बेन्च द्वारा पारित निर्णय के आलोक में स्पष्ट आवेदन के साथ मा. सर्वोच्च न्यायालय को प्रस्तावित किया ताकि स्थिति का समाधान किया जा सके। ”

11. दी गयी स्वतंत्रता के शर्तों में राज्य द्वारा आई ए 29-33/2016 में **लक्ष्मी चन्द्रा का मामला (उपरोक्त)** दो दायर किया गया। उक्त आवेदन दिनांक 25.07.2016 को प्रत्याहृत किया गया था। इसके पश्चात अपीलार्थीगणों ने विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या/2016 सी सी संख्या 25207/2016 दायर की। विशेष अनुमति याचिका को मा. उच्च न्यायालय के प्रस्ताव की स्वतंत्रता के साथ समीक्षा याचिका दायर करते हुए प्रत्याहृत के रूप में निस्तारित कर दिया गया। आदेश निम्नानुसार पढ़ा गया-

“ कुछ तर्कों के पश्चात्, प्रत्यर्थीगणों की तरफ से प्रस्तुत विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री हरिन पी. रावल समीक्षा याचिका के ढंग से मा. उच्च न्यायालय में इस याचिका को प्रस्ताव की स्वतंत्रता के साथ निकालने की अनुमति चाहते हैं ताकि यह प्रमाणित हो कि प्रत्यर्थी 1992 से 2001 तक लगातार नियोजित नहीं था।

अनुमति जैसा कि माँगी गयी थी, प्रदान की गई।

तदनुसार, विशेष अनुमति याचिका उपरोक्त स्वतंत्रता के साथ वापस लेने के रूप में निस्तारित की जाती है। ”

12. इसके पश्चात अपीलार्थीगणों ने विशेष याचिका संख्या 261/2016 में पारित आदेश दिनांक 07.04.2016 के विरुद्ध मा. उच्च न्यायालय के न्यायक्षेत्र इलाहाबाद में एक समीक्षा याचिका संख्या 313796/2017 दायर की। देरी की माफी के लिए समीक्षा याचिका के साथ एक आवेदन दिनांक 06.12.2017 को अभियोजन की इच्छा के लिए मा. उच्च न्यायालय इलाहाबाद द्वारा दायर की जा रही समीक्षा याचिका को निस्तारित कर दिया गया था। दिनांक 06.12.2017 के आदेश को

उद्घोषणा

“क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्विधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा।”

वापस लेने के लिए उक्त आवेदन जो असफल रहा जो वर्तमान अपील में चुनौती का विषय वस्तु है।

13. अपीलार्थीगणों की तरफ से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्रत्यर्थी को न्यूनतम वेतनमान का भुगतान किया गया है और उसने 31.07.2018 को सेवानिवर्तन की आयु को प्राप्त किया और सेवानिवृत्त हो गया। यह विवादित है कि इस न्यायालय का निर्देश दो भागों में है—(अ) इस न्यायालय के निर्देशानुसार **पुत्ती लाल के मामले (उपरोक्त)** में सभी दैनिक वेतनभोगियों को न्यूनतम वेतन का भुगतान करना और (ब) सांविधिक नियमों की शर्तों में कर्मचारियों के नियमितीकरण पर विचार करना। चूंकि न्यूनतम वेतनमान का भुगतान प्रत्यर्थी को किया जाता है, इसलिए इस सम्बन्ध में इस विवाद का कोई अस्तित्व नहीं है।

14. हालांकि सेवा के नियमितीकरण के सम्बन्ध में, यह तर्क दिया गया कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि प्रत्यर्थी ने दैनिक वेतनभोगी के रूप में वर्ष 1994 से 2000 यानी लगभग सात वर्षों तक कार्य किया। अतः उसने दैनिक वेतनभोगी के रूप में 2001 से 2003 तक रुक रुककर कार्य किया है और ऐसा कोई अभिलेख उपलब्ध नहीं है कि प्रत्यर्थी ने दिसम्बर 2003 से कार्य किया हो। अतः जब दिनांक 19.11.2008 को आदेश पारित किया गया था उसके नियमितीकरण के लिए उसके दावे को स्वीकार नहीं किया गया था।

15. एक बार आदेश विभाग द्वारा पारित किया गया है, यह प्रत्यर्थी के लिए रिट याचिका के माध्यम से उक्त आदेश की चुनौती के लिए मुक्त था, लेकिन अवमानना न्यायक्षेत्र को उत्पन्न नहीं किया जा सका। अवमानना न्यायालय ने यह सुनिश्चित किया है कि न्यायालय का आदेश के साथ अनुपालन किया गया है। न्यायालय के आदेश दिनांक 23.10.2008 को उसकी सेवाओं को नियमितीकरण और न्यूनतम नियमित वेतनमान के लिए प्रत्यर्थी के मामले में विचार करना था।

16. चूंकि अपीलार्थी ने नियमितीकरण और/अथवा न्यूनतम वेतनमान भुगतान के दावे पर विचार किया है, प्रत्यर्थी का एकमात्र उपाय रिट याचिका के माध्यम से था।

उद्घोषणा

“क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्विधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा।”

मा. उच्च न्यायालय ने राज्य के अधिकारियों को न्यायालय में उपस्थित होने के लिए विवश करने के लिए अवमानना न्यायक्षेत्र को पार कर लिया है और वस्तुतः मा. उच्च न्यायालय दिनांक 23.10.2008 को एकल पीठ द्वारा पारित आदेशों के बहुत परे निकल गये।

17. अपीलार्थीगणों की तरफ से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि **छिद्दी के मामले (उपरोक्त)** में मा. उच्च न्यायालय के डिवीजन बेन्च द्वारा नियमितीकरण के प्रश्न पर विचार किया गया है जिसमें न्यूनतम वेतनमान का मुद्दा और साथ ही साथ सेवा में कृत्रिम विराम को तय किये गये शर्तों में सेवा के नियमितीकरण के मामले में परीक्षण किया गया था। सेवा के सम्बन्ध में मा. न्यायालय का तर्क निम्नानुसार है—

“ इस प्रकार, उपरोक्त सभी कारणों के लिए कहा गया कि दिनांक 17 अक्टूबर 2005 को विद्वत न्यायाधीश द्वारा राज्य सरकार को निर्देश जारी किये गए, जो कि अंशतः रिट याचिकाओं की अनुमति देते हुए न्यूनतम शैक्षिक योग्यता अथवा शारीरिक धैर्य की आवश्यकता को अनदेखा करते हुए उनकी सेवाओं को नियमितीकरण हेतु रिट याचिकाकर्ताओं के मामले का पुनर्विचार सेवा नियमावली में एक और दिशानिर्देश के साथ निर्धारित किया गया है कि जब तक सभी याचिकाकर्तागण जो अभी भी कार्य कर रहे हैं उन्हें दैनिक वेतनभोगी के आधार पर जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए और न्यूनतम वेतनमान का भुगतान होना चाहिए, तदनुसार निरन्तर नहीं हो सकता, और, अपास्त। राज्य सरकार ऊपर किये गये अवलोकनों के आलोक में दैनिक वेतनभोगियों के मामले पर विचार करेगी और दैनिक भोगियों के रूप में उनके अनबन्ध में कृत्रिम विराम की अनदेखी करेगी। ”

18. फिर भी आगे, मा. उच्च न्यायालय इलाहाबाद ने **सुरेन्द्र सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [विशेष याचिका सं. 1016/2005 24.09.2015 को निर्णीत]** एक निर्णय प्रतिवेदित किया और कहा कि दो वर्ष की अवधि को एक कृत्रिम विराम के रूप में उपचारित नहीं किया जा सकता जिसे नियमितीकरण के दावे के उद्देश्य हेतु उपेक्षित किया जा सकता है। न्यायालय ने निम्नांकित रूप से कहा—

“ विद्वत न्यायाधीश ने पाया कि रिट याचिकाकर्तागणों के रूप में दैनिक वेतनभोगियों के अनुबन्ध का विवरण दिये जाने वाले लेखा में वर्ष 2001-02 में कार्य कर रहे लोगों से संबंधित स्तंभ को खाली छोड़ दिया गया था और

उद्घोषणा

“क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्विधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा।”

वर्ष 2013 के विरुद्ध, यह उल्लेख किया गया कि दोनों रिट याचिकाकर्ता क्रमशः फरवरी 2003 और जुलाई 2003 से कार्य कर रहे थे। विद्वत नयायाधीश ने यह भी अभिलिखित किया और पाया कि रिट याचिकाकर्तागण स्थापना के बोझ का निर्वहन करने में विफल हो चुके हैं, यह कि, संबंधित अवधि के दौरान वन विभाग में दैनिक वेतनभोगी के रूप में कार्य कर रहे थे और रिट याचिकाकर्तागणों का तर्क इस कारण के लिए भी स्वीकार नहीं किया गया था कि वे बिना किसी वेतन भुगतान के कार्य कर रहे हैं यह विश्वास करना मुश्किल था कि रिट याचिकाकर्ता वास्तव में दो वर्ष तक बिना वेतन भुगतान के कार्य कर रहे हैं।

अपीलार्थीगणों की तरफ से प्रस्तुत विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया है कि भले ही रिट याचिकाकर्तागणों द्वारा कुछ अवधि के लिए कार्य न किया गया हो, फिर भी इस विराम को कृत्रिम विराम माना जाना चाहिए और नियमितीकरण के लिए उनके दावे को विचाराधीन उद्देश्य के लिए उपेक्षित किया जाना चाहिए।

वर्तमान मामले में, रिट याचिकाकर्ताओं ने दैनिक वेतनभोगी के आधार पर दो वर्ष की लंबी अवधि के लिए कार्य नहीं किया था। इस विराम को सेवा में एक कृत्रिम विराम के रूप में उपचारित नहीं किया जा सकता। रिट याचिकाकर्तागणों ने 2001 नियमावली में निहित अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं किया। अतः वे 2001 नियमावली के तहत नियमितीकरण के लिए हकदार नहीं हैं। ”

19. मा. उच्च न्यायालय इलाहाबाद की विद्वत एकल पीठ ने **विशेशवर बनाम प्रधान सचिव वन अनुभाग-3 एवं अन्य [सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 47568/2002 29.11.2004 को निर्णीत]** के रूप में एक आदेश प्रतिवेदित किया, जिसमें यह कहा गया कि नियमितीकरण के मामले में कृत्रिम विराम को उपेक्षित किया गया। न्यायालय द्वारा निम्नानुसार कहा गया-

” इन सभी मामलों में, मैंने पाया है कि सेवा में लघु विराम के आधार पर चयन समिति द्वारा नियमितीकरण के लिए विचार करने से वंचित कर दिया गया था। प्रति शपथपत्र में लिए गये फैसले के अनुसार, उन सभी व्यक्तियों को बाहर करने के लिए प्रभागीय सेतर पर एक नीति अपनाई गयी थी जिन्होंने एक कैलेण्डर वर्ष में 240 दिनों के कार्य पर चिन्तन नहीं किया था। मेरी राय में यह विचार पूर्णतः एकपक्षीय था क्योंकि हम औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के तहत छूटनी के प्रश्न से व्यवहार नहीं कर रहे

उद्घोषणा

“क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्विधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा”।

हैं। इसके विपरीत मैंने पाया कि इलाहाबाद प्रभाग में वन संरक्षक / क्षेत्रीय निदेशक, सामाजिक वानिकी इलाहाबाद उत्तर प्रदेश विनियमितीकरण के लिए समान व्यक्तियों के मामले में इस नीति की अनदेखी की गई और निर्देशित किया गया कि 'सेवा में जारी' शब्द की व्याख्या करने में किसी छोटे तर्क को इस स्थिति के साथ अनदेखा किया जा सकता है कि उस व्यक्ति को दैनिक वेतनभोगियों पर आगामी नियुक्ति की गई है। श्री एम. सी. चतुर्वेदी, अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि यह आदेश तत्काल खण्डित कर दिया गया। श्री पंकज श्रीवास्तव ने आदेश का प्रत्याहार करते हुए तर्क दिया कि आदेश में दी गयी व्याख्या के साथ प्राप्त नियमितीकरण को निरस्त किया गया था। जैसा कि वह हो सकता है, चूँकि मैं यह जान रहा हूँ कि नियमितीकरण के मामले में कृत्रिम विराम को नजरअंदाज करना होगा; मुझे इस प्रश्न का फैसला करने की आवश्यकता नहीं है। ”

20. उक्त आदेश विशेष याचिका संख्या 305/2015 में भी चुनौती की विषय वस्तु थी। मा. न्यायालय ने न्यूनतम वेतनमान के भुगतान के सम्बन्ध में अपील की अनुमति दी परन्तु सेवा में विराम के सम्बन्ध में जाँच को सही ठहराया। आदेश से प्रासंगिक उद्धरण निम्नांकित रूप से पढ़ा गया—

“ रिट याचिकाकर्तागणों द्वारा यह तर्क दिया गया कि नियमों के तहत नियमितीकरण के लिए उनके मामले के सिवा न्यायोचित नहीं था केवल इस कारण से कि दैनिक वेतनभोगियों के रूप में कार्य करने के दौरान सेवा में कुछ विराम थे। विद्वत न्यायाधीश ने माना कि कृत्रिम विराम को अनदेखा करना है, और इसलिए प्रत्यर्थीगणों को निर्देशित किया गया कि नये सिरे से नियमितीकरण के लिए रिट याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करें। यह आगे निर्देशित किया गया था कि यदि याचिकाकर्ता अभी भी रोजगार में है तो उसे जारी रखा जाना चाहिए और तब तक न्यूनतम वेतनमान का भुगतान होना चाहिए जब तक उसका मामला विचाराधीन है जैसा कि पुत्ती लाल बनाम अन्य एवं उ. प्र. राज्य के मामले में मा. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्देशित किया गया है।

अपीलार्थीगणों की तरफ से विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा यह कहा गया कि अपीलार्थीगण सेवा में कृत्रिम विराम की अनदेखी करने के लिए जारी किए गये दिशा-निर्देश से पीड़ित नहीं है परन्तु विद्वत न्यायाधीश द्वारा रिट याचिकाकर्ता को न्यूनतम वेतनमान का भुगतान करने का निर्देश अपास्त होना चाहिए। ”

उद्घोषणा

“क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्विधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा।”

21. इस प्रकार, हम पाते हैं कि सेवा में विराम की वजह से सेवा की नियमितीकरण के संबंध में शिकायत को कार्यवाहियों की अवमानन में नहीं लिया जा सकता, जब इस तरह के मुद्दे को मा. उच्च न्यायालय में परिसमाप्ति प्राप्त हो चुकी है।

22. उपरोक्त कहने के पश्चात, हम पाते हैं कि मा. उच्च न्यायालय अधिकारियों की उपस्थिति को सुरक्षित रखने के लिए समय समय पर पारित आदेशों में न्यायोचित नहीं था। राज्य के अधिकारी सार्वजनिक कार्यों और कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं। आदेशों को सामान्यतः अच्छे विश्वास में पारित होने के लिए परिकल्पित किया गया न कि अन्यथा साबित करने के लिए। अधिकारी सार्वजनिक धन के संरक्षक के रूप में आदेश पारित करते हैं अतः मात्र इसलिए कि एक आदेश पारित किया गया है, यह उनके व्यक्तिगत उपस्थिति को वारंट नहीं करता है। कार्यवाहियों में भाग लेने के लिए अधिकारियों को न्यायालय में सम्मन करते हुए अधिकारियों के कार्यविधि पर अतिक्रमण करता है और अंततः जनता बड़े पैमाने पर उन्हें सौंपे गये कर्तव्यों पर उनकी अनुपस्थिति की वजह से प्रभावित होते हैं। अधिकारियों को न्यायालय द्वारा सम्मन करने की प्रणाली सही नहीं है और यह कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्तियों के अलगाव के मद्देनजर न्याय प्रशासन के उद्देश्य को पूरा नहीं करता है। यदि कोई आदेश कानूनी नहीं है तो मा. न्यायालयों के पास इस तरह के आदेश को अलग करने और मामले के तथ्यों में वारंट किये जा सकने वाले निर्देशों का जारी करने के लिए पर्याप्त अधिकार क्षेत्र हैं।

23. उपरोक्त तर्कों के मद्देनजर, हम पाते हैं कि अवमानना आवेदन संख्या 1632/2009 में सम्पूर्ण कार्यवाहियाँ पूर्ण रूप से अन्यायपूर्ण हैं और इससे अधिक अधिकार क्षेत्र में अवमानना न्यायालय के पास है। फलस्वरूप, अपील को अनुमति दी गयी और अवमानना आवेदन को खारिज कर दिया गया है।

.....
न्यायमूर्ति संजय किशन कौल

.....
न्यायमूर्ति हेमन्त गुप्ता

उद्घोषणा

“क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्विधित प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा।”

नई दिल्ली,
10 अप्रैल, 2019

उद्घोषणा

“क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्विधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा।”